[2022] 7 एस. सी. आर 939

मुज़फ़्फ़र हुसैन

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य।

(2022 की सिविल अपील संख्या 3613)

06 मई, 2022

[डॉ. धनंजय वाई. चंद्रचूड़ और बेला एम. त्रिवेदी, जे. जे.]

न्यायपालिकाः अधीनस्थ न्यायपालिका- न्यायिक अधिकारी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही-न्यायिक अधिकारी- अपीलार्थी ने सेवा से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति ले ली और सदस्य के रूप में न्यायाधिकरण में शामिल हो गया-उसके खिलाफ दुराचार के आरोप, जब वह न्यायिक अधिकारी के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहा था- उसके खिलाफ आरोप लगाए गए, विभागीय जांच की गई और आरोप साबित हुए-उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायालय ने अपीलार्थी को उसके पेंशन संबंधी लाभों में 90 प्रतिशत की कटौती के साथ तत्काल प्रभाव से दंडित करने का संकल्प लिया। - राज्य ने अपीलकर्ता के पेंशन से 90% की कटौती को मंजूरी दी - अपीलकर्ता द्वारा चुनौती - उच्च न्यायालय ने 90 प्रतिशत के स्थान पर 70 प्रतिशत की सीमा तक पेंशन लाभों में कटौती को कम कर दिया -अपील पर अभिनिर्धारित किया गयाः संवैधानिक न्यायालय को प्रदत्त न्यायिक समीक्षा की शक्ति अपीलीय प्राधिकरण की नहीं है, बल्कि केवल निर्णय लेने की प्रक्रिया तक ही सीमित है-यदि जांच निष्पक्ष और उचित रूप से की गई है, और निष्कर्ष साक्ष्य पर आधारित हैं, तो साक्ष्य की पर्याप्तता या साक्ष्य की विश्वसनीयता मामले में दर्ज किए गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने का आधार नहीं होगी। विभागीय पूछताछ-तथ्यों पर, अपीलार्थी को आरोप-पत्र देने और उसे सुनवाई का पूरा अवसर देने के बाद उसके खिलाफ नियमित अनुशासनात्मक कार्यवाही की गई थी -इसके अलावा, अपीलार्थी ने प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन या किसी भी वैधानिक नियमों या विनियमों के उल्लंघन के संबंध में कोई आरोप नहीं लगाया था, जो जांच कार्यवाही के दौरान या निर्णय लेने की प्रक्रिया में हुआ था-इसके अलावा, यह दिखाने के लिए पर्याप्त सबूत और सामग्री थी कि अपीलार्थी ने एक न्यायिक

अधिकारी के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए स्वयं गलत व्यवहार किया, और कुछ पक्षों को अनुचित लाभ देने के लिए कानून के विशिष्ट प्रावधानों की पूरी तरह से अवहेलना करते हुए न्यायिक आदेश पारित किए, और यह कि ऐसे आदेश भ्रष्ट उद्देश्य से किए गए थे। इस प्रकार, उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्तिपरक संतुष्टि पर पहुँचा गया, प्रशासनिक पक्ष, और न्यायिक पक्ष पर उच्च न्यायालय द्वारा पारित विवादित आदेश में किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं थी- उच्च न्यायालय ने अनुच्छेद-235 के तहत अपने पर्यवेक्षी अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में न्यायसंगत ठहराया। - यू. पी. सरकार सेवक आचरण नियम, 1956- नियम 3 - सिविल सेवा विनियम- अनुच्छेद 351 (ए)-भारत का संविधान- अनुच्छेद 235.

अपील खारिज करते हुए कोर्ट ने कहा,

निर्धारण: 1.1 संवैधानिक न्यायालय को प्रदत्त न्यायिक समीक्षा की शक्ति अपीलीय प्राधिकरण की नहीं है, बल्कि यह है - केवल निर्णय लेने की प्रक्रिया तक ही सीमित। विभागीय अधिकारियों के निर्णय में हस्तक्षेप की अनुमति केवल तभी दी जाती है जब कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए या ऐसी कार्यवाही को विनियमित करने वाले वैधानिक नियमों का उल्लंघन करते हुए या यदि निर्णय मनमाना या स्वेच्छाचारी पाया जाता है। न्यायालय एक अपीलीय न्यायालय के रूप में कार्य करेंगे और उन्हें घरेलू जांच में दिए गए साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन नहीं करना चाहिए, और न ही इस आधार पर हस्तक्षेप करना चाहिए कि अभिलेख पर सामग्री पर कोई अन्य दृष्टिकोण संभव है। यदि जांच निष्पक्ष और उचित रूप से की गई है, और निष्कर्ष साक्ष्य पर आधारित हैं, तो साक्ष्य की पर्याप्तता या विश्वसनीयता विभागीय पूछताछ में दर्ज निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने का आधार नहीं होगा। [पैरा 8] [952-बी-डी]

1.2 अपीलार्थी को आरोपपत्र देने और उसे सुनवाई का पूरा अवसर देने के बाद उसके खिलाफ नियमित अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाती है। इसके बाद, जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत जांच रिपोर्ट के अनुसार, उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायालय ने उक्त जांच रिपोर्ट को स्वीकार करने के लिए 02.09.2006 पर निर्णय लिया था और अपीलार्थी को तत्काल प्रभाव से पेंशन लाभ में 90 प्रतिशत की कटौती के साथ दंडित किया था । उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायालय द्वारा की गई उक्त सिफारिश के आधार पर प्रतिवादी- राज्य द्वारा पारित सजा के आदेश को अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका दायर करके चुनौती दी गई थी। उच्च न्यायालय ने आरोप

संख्या 1 से 3 को हटा दिया और आरोप संख्या 4 से 11 को अपीलार्थी के खिलाफ बरकरार रखा और उसके पेंशन लाभों के 90 प्रतिशत के स्थान पर सजा को घटाकर 70 प्रतिशत कर दिया गया। [पैरा 11] [953-एफ-एच; 954-ए]

1.3 उल्लेखनीय है कि अपीलकर्ता ने प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के उल्लंघन या जांच के दौरान या निर्णय लेने के दौरान किसी वैधानिक नियम या विनियम के उल्लंघन के संबंध में कोई आरोप नहीं लगाया था। इसलिए, इस तरह के किसी आरोप के अभाव में, उच्च न्यायालय के प्रशासनिक पक्ष द्वारा व्यक्तिपरक संतुष्टि पर पहुंच कर, और उच्च न्यायालय द्वारा न्यायिक पक्ष में पारित आक्षेपित आदेश में इस न्यायालय के किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता है। जब जांच कार्यवाही उचित और कानूनी तरीके से संचालित की गई पाई गई है, और जब प्रशासनिक पक्ष के साथ-साथ न्यायिक पक्ष में उच्च न्यायालय ने जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों को स्वीकार कर लिया और आरोप संख्या 4 से 11 को अपीलार्थी के खिलाफ "साबित" किया गया है, उसे "कदाचार" करने का दोषी ठहराते हुए, इस न्यायालय से अपील प्राधिकारी के रूप में बैठने और जांच अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य की पर्याप्तता या विश्वसनीयता का पुनर्मूल्यांकन करने की अपेक्षा नहीं की गई थी। [पैरा 12] [954-बी-डी]

1.4 यह निवेदन कि न्यायिक अधिकारियों के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही केवल इसलिए शुरू नहीं की जा सकती क्योंकि उनके द्वारा पारित निर्णय या आदेश गलत थे, स्वीकार किए जाते हैं, फिर भी, तत्काल मामले में अपीलार्थी को उस तरीके से कार्यवाही का संचालन करते हुए पाया गया जो उसकी प्रतिष्ठा और सत्यनिष्ठा पर प्रतिबिंबित होता था। यह दिखाने के लिए पर्याप्त सबूत और सामग्री थी कि अपीलार्थी ने एक न्यायिक अधिकारी के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते समय गलत आचरण किया था, और कानून के विशिष्ट प्रावधानों की पूरी तरह से अवहेलना करते हुए न्यायिक आदेश पारित किए थे, ताकि अधिग्रहित भूमि के बाद के खरीदारों का अनुचित पक्ष लिया जा सके, जिन्हें मुआवजे का दावा करने का कोई अधिकार नहीं था, और यह कि ऐसे आदेश भ्रष्ट उद्देश्य से किए गए थे। इन परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद-235 के तहत अपने पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में पूरी तरह से उचित था। न्यायिक आदेश पारित करने की आड़ में किसी पक्ष को अनुचित पक्ष दिखाना सबसे खराब प्रकार की न्यायिक बेईमानी और कदाचार है। अनुचित पक्षपात दिखाने के लिए बाहरी विचार हमेशा एक मौद्रिक विचार होने की आवश्यकता नहीं है। अक्सर कहा जाता है कि "लोक

सेवक पानी में मछली की तरह होते हैं, कोई नहीं कह सकता कि मछली ने पानी कब और कैसे पिया"। एक न्यायाधीश को अभिलेख पर तथ्यों और मामले में लागू कानून के आधार पर मामले का फैसला करना चाहिए। यदि वह बाहरी कारणों से किसी मामले का फैसला करता है, तो वह अपने कर्तव्यों का कानून के अनुसार पालन नहीं कर रहा है। [पैरा 14 और 15] [955-डी-एच]

आगरा विकास प्राधिकरण, आगरा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य। **2004 एस. सी. सी. ऑनलाइन ऑल 269;** भारत संघ और अन्य बनाम इकबाल सिंह **(1976) 1 एससीसी 570: [1976] 2 एससीआर 988;** खोरशेद शापूर चेनाई श्रीमती बनाम सहायक नियंत्रक संपदा शुल्क **(1980) 2 एस. सी. सी. 1: [1980] 2 एस. सी. आर. 325;** भारतीय खाद्य निगम बनाम कैलाश चंद **2014 (1) एडीजे 379 (डीबी);** सोरन सिंह बनाम कलेक्टर और अन्य। **2018 एस. सी. सी. ऑनलाइन ऑल 5936;** यूपी जल निगम, लखनऊ बनाम कालरा प्रॉपर्टीज़ (पी) लिमिटेड, लखनऊ और अन्य। **(1996) 3 एससीसी 124: [1996] 1 एस. सी. आर. 683;** मीरा साहनी बनाम उपराज्यपाल दिल्ली **(2008) 9 एस. सी. सी. 177: [2008] 10 एससीआर 1012;** कृष्ण प्रसाद वर्मा (मृत) कानूनी बनाम राज्य बिहार और अन्य । **(2019) 10 एससीसी 640: [2019] 12 एससीआर 861;** साधना चौधरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **(2020) 11 एस. सी. सी. 760;** अभय जैन बनाम उच्च न्यायालय राजस्थान और अन्य । **(2022) एससीसी ऑनलाइन एससी 319;** सर्वपल्ली रमैया (डी) त्र. एल. आर. एस बनाम जिला कलेक्टर चित्तूर **(2019) 4 एससीसी 500: [2019] 5 एससीआर 372;** भारत संघ बनाम के.के. धवन **(1993) 2 एससीसी 56: [1993] 1 एससीआर 296;** सी. रविचंद्रन अय्यर बनाम. न्यायमूर्ति ए.एम. भट्टाचार्जी और अन्य। **(1995) 5 एससीसी 457: [1995] 3 पूरक। एस. सी. आर. 319;** बॉम्बे उच्च न्यायालय बनाम. शशीकांत एस. पाटिल और अन्य । **(2000) 1 एससीसी 416: [1999] 4 पूरक। एस. सी. आर. 205;** स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एंड जयपुर बनाम नेमी चंद नलवाया **(2011) 4 एस. सी. सी. 584: [2011] 3 एस. सी. आर. 589-संदर्भित।**

<u>मामला कानून संदर्भ</u>

[1976] 2 एससीआर 988	**संदर्भित किया गया है**	**पैरा 3 (iii)**
[1980] 2 एस. सी. आर. 325	**संदर्भित किया गया है**	**पैरा 3 (iii)**

[1996] 1 एससीआर 683	**संदर्भित किया गया है**	**पैरा 3 (iv)**
[2008] 10 एससीआर 1012	**संदर्भित किया गया है**	**पैरा 3 (iv)**
[2019] 12 एससीआर 861	**संदर्भित किया गया है**	**पैरा 3 (vi)**
(2020) 11 एस. सी. सी. 760	**संदर्भित किया गया है**	**पैरा 3 (vi)**
[2019] 5 एससीआर 372	**संदर्भित किया गया है**	**पैरा 4 (ii)**
[1993] 1 एससीआर 296	**संदर्भित किया गया है**	**पैरा 4 (v)**
[1995] 3 पूरक। एससीआर 319	**संदर्भित किया गया है**	**पैरा 5**
[1999] 4 पूरक। एससीआर 205	**संदर्भित किया गया है**	**पैरा 9**
[2011] 3 एससीआर 589	**संदर्भित किया गया है**	**पैरा 10**

सिविल अपीलीय न्यायनिर्णयः सिविल अपील No.3613 का 2022।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के 17.04.2019 दिनांकित निर्णय और आदेश से 2007 की सर्विस बेंच संख्या-496 में, लखनऊ बेंच, लखनऊ में ।

प्रदीप कांत, वरिष्ठ अधिवक्ता, सुश्री वंशजा शुक्ला, सिमरजीत सिंह रेखी, जावेद मुजफ्फर, सजल सिंघई, अधिवक्ता। अपीलार्थी के लिए।

सुश्री चारू अंबवानी, प्रदीप मिश्रा, सूरज सिंह, अधिवक्ता। उत्तरदाता के लिए।

बेला एम. त्रिवेदी, जे. द्वारा न्यायालय का निर्णय सुनाया गया

1. तत्काल अपील में उच्च न्यायालय, इलाहाबाद, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 17.04.2019 को चुनौती, रिट याचिका संख्या 496 ऑफ 2017 के द्वारा लखनऊ में बेंच दायर किया गया। अपीलकर्ता ने प्रतिवादी द्वारा जारी सजा के आदेश को चुनौती दी- उच्च न्यायालय की पूर्ण अदालत के निर्णय के अनुसार राज्य ने निर्णय लिया, अनुशासनात्मक कार्यवाही के संबंध में जांच अधिकारी की रिपोर्ट पर अपीलार्थी के खिलाफ

एक न्यायिक अधिकारी के रूप में उसके द्वारा किए गए कथित कदाचार के लिए कार्यवाही शुरू की गई।

2. **<u>तथ्यात्मक मैट्रिक्सः</u>**

i. अपीलार्थी उत्तर प्रदेश न्यायिक सेवा में वर्ष 1978 में शामिल हुआ था और उक्त सेवाओं से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की मांग की सितंबर 2003 में की। सेवानिवृत्त के तुरंत बाद, अपीलार्थी न्यायिक सदस्य, के रूप में केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, मुंबई पीठ, मुंबई में शामिल हुए। दिनांक 19.07.2005 को पत्र, ओ. एस. डी. (पूछताछ), इलाहाबाद उच्च न्यायालय दिनांकित 19.07.2005, प्रधान पंजीयक, कैट, नई दिल्ली को संबोधित करते हुए, द्वारा अपीलार्थी को सूचित किया गया था कि उच्च न्यायालय ने उनके विरुद्ध विभागीय जांच क्रमांक 26 का 2005 शुरू की थी। आरोप पत्र की एक प्रति इसके साथ संलग्न थी। उक्त आरोप-पत्र में अपीलार्थी के विरुद्ध बारह आरोप लगाए गए थे । याचि के विरुद्ध, अन्य बातों के साथ-साथ यह आरोप लगाया गया था कि अपीलकर्ता जब 11वें अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, आगरा के रूप में तैनात थे, इस अवधि 23.05.2001 से 19.05.2003 के दौरान, भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के तहत मामलों के एक समूह का फैसला किया था और बढ़े हुए मुआवजे का पुरस्कार दिया था जो बाद में किए गए निवेशों की तुलना में कई गुना अधिक था। अधिग्रहित भूमि के खरीदार; कि ऐसे बाद के खरीदारों को अधिग्रहित भूमि के लिए मुआवजे का दावा करने का कोई अधिकार नहीं था; कि अपीलार्थी ने मुआवजे का निर्धारण वर्ग गज के संदर्भ में किया था न कि बीघा के संदर्भ में, और इस तरह के मुआवजे को कानून और शाम्य के मुख्य सिद्धांतों के घोर उल्लंघन में और सभी न्यायिक मानदंडों और औचित्य के खिलाफ, ऐसे बाद के खरीदारों का अनुचित पक्ष लेने की दृष्टि से दिया था। इसलिए यह आरोप लगाया गया था कि अपीलार्थी पूर्ण सत्यनिष्ठा और कर्तव्य के प्रति पूर्ण समर्पण बनाए रखने में विफल रहा था और इस तरह उसने उत्तर प्रदेश सरकार सेवक आचरण नियम, 1956 के नियम-3 के अर्थ के भीतर एक कदाचार किया था। अपीलार्थी के खिलाफ लगाए गए आरोप सं0- 12 श्री के. सी. जैन नामक एक वकील के बेटे को उसके पक्ष में मुआवजे में अत्यधिक वृद्धि करके अनुचित लाभ से संबंधित हैं ।

ii. अपीलकर्ता ने दिनांक 07.09.2005 और 19.09.2005 के पत्रों के माध्यम से अपने ऊपर लगे सभी आरोपों से इनकार किया। दिनांक 20.01.2006 को, अपीलार्थी को लिखित दलीलें प्राप्त हुआ जो विभाग की ओर से शुरू की गई विभागीय जांच में उसके खिलाफ जमा किया गया था और अपीलकर्ता ने भी लिखित दलीलें 10.02.2006 को उक्त जांच में दाख़िल किया था।

iii. जाँच अधिकारी ने अपनी जाँच रिपोर्ट दिनांक 05.04.2006 में आरोप सं. 1 से 11 को "सिद्ध" के रूप में और आरोप संख्या 12 "सिद्ध नहीं" के रूप में धारित किया था। जाँच अधिकारी ने उक्त रिपोर्ट प्रस्तुत की मुख्य न्यायाधीश/प्रशासनिक समिति/पूर्ण न्यायालय को सजा की मात्रा के प्रश्न पर आगे विचार के लिए प्रस्तुत कीं। अपीलार्थी को बुलाया गया और उसने अपनी उक्त पूछताछ रिपोर्ट के लिए 14.06.2006 पर प्रतिक्रिया याचिका दायर की। इलाहाबाद में उच्च न्यायालय ने अपनी पूर्ण न्यायालय की बैठक में कहा कि 02.09.2006 ने जांच की रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया है। अधिकारी और अपीलार्थी को तत्काल प्रभाव से उसके पेंशन लाभों में 90 प्रतिशत की कटौती के साथ दंडित करने का संकल्प लिया। उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायालय द्वारा की गई उक्त सिफारिश के अनुसरण में, प्रतिवादी-राज्य ने दिनांक 22.01.2007 पर एक आदेश पारित किया, जिसमें सिविल सेवा विनियमों के अनुच्छेद 351 (ए) में निहित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए अपीलार्थी की पेंशन से 90 प्रतिशत की रोक को मंजूरी दी गई।

iv. पीड़ित अपीलार्थी ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय, लखनऊ पीठ, लखनऊ के समक्ष एक रिट दायर करके उक्त आदेश की वैधता को चुनौती दी। उच्च न्यायालय की खंड पीठ ने दिनांकित 17.04.2019 आदेश के माध्यम से पाया गया कि विवादित सजा का आदेश, आरोप संख्या 1से 3 तक के संदर्भ में, कानून की नजर में टिकाऊ नहीं था क्योंकि प्रतिवादी आरोप पत्र से 4 साल पहले हुई घटनाओं के लिए आरोप नहीं बना सकते थे। हालांकि, उच्च न्यायालय ने माना कि आरोप संख्या 4 से 11 तक के संदर्भ में दर्ज किए गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं है। उच्च न्यायालय ने समग्र परिस्थितियों पर विचार करते हुए पेंशन लाभों में 90 प्रतिशत के स्थान पर 70 प्रतिशत की कटौती। वर्तमान अपील

उच्च न्यायालय द्वारा पारित किये गये उक्त आदेश के विरुद्ध निर्देशित किया जाता है।

3. अपीलकर्ता की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री प्रदीप कांत ने निम्नलिखित तर्क उठाए:

   i. अपीलकर्ता के खिलाफ जांच उच्च न्यायालय द्वारा ***आगरा विकास प्राधिकरण, आगरा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य***[1] में जारी किये गये निर्देश के आधार पर शुरू की गई थी हालाँकि अपीलकर्ता के खिलाफ कोई शिकायत लंबित नहीं थी।

   ii. आरोप-पत्र में अपीलार्थी के खिलाफ लगाए गए आरोपों के केवल अवलोकन से पता चलता हैं कि आरोप प्रथमदृष्टया कदाचार का मामला भी नहीं बनता और वे न तो तथ्यात्मक रूप से और न ही कानूनी रूप से प्रमाणित थे।

   iii. क्षतिपूर्ति मांगने का अधिकार संपत्ति का अधिकार है और केवल मुकदमा करने का अधिकार नही है, और इसे कानूनी रूप से एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक हस्तांतरित किया जा सकता है। जैसा कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा निर्णयों की शृंखला में अभिनिर्धारित किया गया है। इस संबंध में, उन्होंने ***भारत संघ और अन्य बनाम इकबाल सिंह***[2] ***; खोरशेद शापूर चेनाई मेसर्स बनाम सहायक नियंत्रक एस्टेट ड्यूटी***[3]***, भारतीय खाद्य निगम बनाम कैलाश चंद***[4] **और** ***सोरन सिंह बनाम कलेक्टर & अन्य***[5] के फैसले पर विश्वास किया है।

   iv. अपीलार्थी द्वारा भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 4(1) के तहत अधिसूचना जारी करने की तिथि पर भूमि के बाजार मूल्य पर मुआवज़ा प्रदान किया गया। अधिग्रहण की गई भूमि के संबंध में बाद के खरीदारों द्वारा पेशकश की गई कीमत या निवेश के लिए इसकी कोई प्रासंगिकता नहीं थी। इस संबंध में, श्री प्रदीप कांत ने

---

[1] 2004 एससीसी ऑनलाइन ऑल 269

[2] (1976) 1 एससीसी 570

[3] (1980) 2 एससीसी 1

[4] 2014 (1) एडीजे 379 (डीबी)

[5] 2018 एससीसी ऑनलाइन ऑल 5936

यूपी जल निगम, लखनऊ बनाम कालरा प्रॉपर्टीज (पी) लिमिटेड, लखनऊ और अन्य[6], मीरा साहनी बनाम. उपराज्यपाल दिल्ली[7] आदि पर विश्वास किया।

v. कई मामले, जिनमें अपीलार्थी द्वारा बढ़े हुए मुआवजे का आदेश दिया गया था, उच्च न्यायालय द्वारा और कुछ मामलों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बरकरार रखा गया था और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता था कि अपीलार्थी को बाहरी विचार द्वारा प्रेरित किया गया था जैसा कि आरोप लगाया गया था।

vi. अपीलार्थी के खिलाफ कोई विशिष्ट आरोप नहीं था कि उसने रिश्वत ली थी या किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के प्रति कोई अनुचित अनुग्रह दिखाया था। इसलिए, केवल इसलिए कि एक बढ़ा हुआ मुआवजा दिया गया था, बाहरी विचार का कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। केवल संदेह यह साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं था कि अपीलकर्ता ने ऐसा बाह्य विचार से किया। इस संबंध में श्री प्रदीप कांत ने ***कृष्णा प्रसाद वर्मा (मृत) थ्रू कानूनी प्रतिनिधि बनाम बिहार राज्य एवं अन्य[8], साधना चौधरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य[9]*** और सुप्रीम कोर्ट का नवीनतम फैसला ***अभय जैन बनाम उच्च न्यायालय की न्यायपालिका राजस्थान एवं अन्य*** [10] के मामले में निर्णयों पर विश्वास किया है।

vii. अपीलकर्ता को किसी गंभीर कदाचार का या कोई हानि होने पर दोषी नहीं ठहराया जा रहा है, उसे 'गंभीर कदाचार' के लिए सज़ा. नहीं किया जा सकता।

4. विद्वान अधिवक्ता चारू अंबवानी, प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से निम्नलिखित तर्क पेश किये:

i. अनुशासनात्मक कार्यवाही के मामले में उच्च न्यायालय का अपने न्यायिक अधिकारियों पर पूरा नियंत्रण है। तत्काल मामले में, नियमित अनुशासनात्मक जांच करने और कानून की उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद, जांच अधिकारी ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी। उसी को पूर्ण न्यायालय

---

[6] (1996) 3 एससीसी 124

[7] (2008) 9 एससीसी 177

[8] (2019) 10 एससीसी 640

[9] (2020) 11 एससीसी 760

[10] (2022) एससीसी ऑनलाइन एससी 319

के समक्ष रखा गया था और उच्च न्यायालय की सामूहिक चेतना को धक्का लगा था, यह देखते हुए कि जिस तरह से अपीलार्थी ने एक न्यायिक अधिकारी के रूप में काम करते हुए खुद को गलत तरीके से पेश किया था।

ii. न्यायिक पुनर्विलोकन का दायरा बहुत सीमित है। तय कानूनी स्थिति के अनुसार, अदालतें अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा लिये गए निर्णय के अपील में बैठ कर स्वयं के निष्कर्ष को स्थानापन्न नहीं कर सकतीं, जब तक कि कोई विकृति या प्रत्यक्ष अवैधता या प्रक्रिया में अतार्किकता न पाई गई हो। न्यायिक समीक्षा निर्णय के विरुद्ध नहीं बल्कि केवल निर्णय लेने की प्रक्रिया के विरुद्ध अनुज्ञेय है। इस संबंध में उन्होंने इस न्यायालय के निर्णय ***सर्वपल्ली रमैया (डी) ट्र. एलआरएस बनाम जिला कलेक्टर चित्तूर***[11] पर विश्वास किया है।

iii. अपीलकर्ता को उनके विरुद्ध की गई जाँच कार्यवाही के दौरान पूर्ण एवं निष्पक्ष अवसर दिया गया और उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायालय द्वारा अभिलेख के संपूर्ण सामग्री पर विचार करने के बाद निर्णय लिया गया था। अधिरोपित दंड भी अपीलार्थी के अपराध के अनुपात में था।

iv. न्यायालय को पूछताछ अधिकारी द्वारा दर्ज साक्ष्य के पास ले जाते हुए, उसने प्रस्तुत किया कि अपीलार्थी ने मुआवजे को कई गुना बढ़ा दिया था ताकि बाद के खरीदारों को अनुचित पक्ष दिया जा सके, जिन्हें मुआवजा प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं था। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि दावेदार जो बाद के खरीदार थे, उन्होंने बहुत कम निवेश किया था और मूल मालिकों के स्थान पर मुआवजा प्राप्त करने और मुकदमा करने का अधिकार खरीदा था, जो भूमि अधिग्रहण अधिनियम में निहित प्रावधानों के साथ संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 6 (ई) के तहत पूरी तरह से निषिद्ध था।

v. अंत में, उन्होंने ***भारत संघ बनाम के. के. धवन***[12] के मामले में इस न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया। जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि न्यायिक अधिकारी, यदि लापरवाही या लापरवाही से कार्य करता है या किसी व्यक्ति को अनुचित पक्ष देने का प्रयास करता है या

---

[11] (2019) 4 एससीसी 500

[12] (1993) 2 एससीसी 56

कोई निर्णय लेता है जो भ्रष्ट उद्देश्य से प्रेरित होता है, तो वह न्यायाधीश के रूप में कार्य नहीं कर रहा है। विभागीय जाँच पर साक्ष्य के सख्त नियम लागू नहीं होते हैं।

5. प्रारंभ में, यह ध्यान दिया जा सकता है कि न्यायिक अधिकारियों के आचरण और चरित्र का उच्च मानक बनाए रखना हमेशा इस अदालत के लिए बहुत चिंता का विषय रहा है।

6. इस अदालत ने ***सी. रविचंद्रन अय्यर बनाम न्यायाधीश ए. एम. भट्टाचार्जी एवं अन्य***[13] में न्यायाधीशों द्वारा सत्यनिष्ठा, ईमानदारी और नैतिक शक्ति के उच्च मानक बनाए रखने की आवश्यकता पर बल दिया, पर्यवेक्षण किया: -

" न्यायिक कार्यालय अनिवार्य रूप से एक सार्वजनिक न्यास है। इसलिए, समाज हकदार है कि एक न्यायाधीश उच्च सत्यनिष्ठा, ईमानदारी और आवश्यक नैतिक शक्ति, नैतिक दृढ़ता और भ्रष्ट या विषाक्त के प्रति अभेद्य व्यक्ति हो। उसे सबसे सटीक न्यायिक आचरण के मानकों का पालन करना आवश्यक है। कोई भी आचरण जो न्यायपालिका की सत्यनिष्ठा और निष्पक्षता में जनता के विश्वास को कम करता है, न्यायिक प्रक्रिया की प्रभावकारिता के लिए हानिकारक होगा। इसलिए, समाज एक न्यायाधीश से आचरण और शुद्धता के उच्च मानकों की अपेक्षा करता है। न्यायिक अधिकारियों के लिए आचरण का अलिखित कोड अनुकरण और आत्मसात करने के लिए बहुत व्यापक है, एक कार्यात्मक उच्च न्यायिक व्यक्ति से उच्च नैतिक या नैतिक मानकों की अपेक्षा की जाती है, आचरण के पूर्ण मानक के रूप में जो जनता में न केवल न्यायाधीश की बल्कि स्वयं न्यायालय में विश्वास पैदा करेगा, न्यायपालिका को गरिमा प्रदान करेगा और सार्वजनिक छवि को बढ़ाएगा। इसलिए यह एक बुनियादी आवश्यकता है कि न्यायाधीश का आधिकारिक और व्यक्तिगत आचरण अनुचितता से मुक्त हो; यह औचित्य और ईमानदारी के उच्चतम मानक के अनुरूप होना चाहिए। आचरण का स्तर एक आम आदमी की अपेक्षा से अधिक है और एक अधिवक्ता की अपेक्षा से भी अधिक। वास्तव में, उनके निजी जीवन में भी उच्च सत्यनिष्ठा और औचित्य के मानक स्तर का पालन करना चाहिए, जो दूसरों के लिए स्वीकार्य माने गए मानकों से अधिक है।

---

[13] (1995) 5 एससीसी 457

इसलिए, न्यायाधीश समाज में गिरे हुए स्तर का बचने के लिए आश्रय नहीं लें सकता है।"

साधना चौधरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य[14] में, यह न्यायालय इस बात को दोहराया कि न्यायिक अधिकारियों को ईमानदारी, सत्यनिष्ठा और सत्यनिष्ठा के मानक की आकांक्षा रखनी चाहिए और उनका पालन करना चाहिए।

" 19. इस न्यायालय द्वारा यह दोहराया गया है कि न्यायिक अधिकारियों को उच्च मानक की आकांक्षा रखनी चाहिए और उनका पालन करना चाहिए ईमानदारी, सत्यनिष्ठा और ईमानदारी। हाल ही में ***श्रीरंग यादवराव वाघमारे बनाम महाराष्ट्र राज्य*** [श्रीरंग यादवराव वाघमारे बनाम महाराष्ट्र राज्य (2019) 9 एस. सी. सी. 144: (2019) 2 एस. सी. सी. (एल. एंड एस.) 582],में इस न्यायालय की एक खंड पीठ ने इन सिद्धांतों को बहुत संक्षेप में संकलित किया और दोहराया कि - (एससीसी पीपी 146-47 , पैरा 5-10)

5. एक न्यायाधीश में आवश्यक पहला और सबसे महत्वपूर्ण गुण सत्यनिष्ठा है। न्यायपालिका में ईमानदारी की आवश्यकता अन्य संस्थानों की तुलना में बहुत अधिक है। न्यायपालिका एक ऐसी संस्था है जिसकी नींव ईमानदारी और अखंडता पर आधारित है। अतः यह आवश्यक है कि न्यायिक अधिकारियों के पास वास्तविक अखंडता की गुणवत्ता होना चाहिए। यह न्यायालय तारक सिंह बनाम ज्योति बसु **[तारक सिंह बनाम ज्योति बसु, (2005) 1 एस. सी. सी. 201]** में निम्नानुसार माना हैः (एस. सी. सी पी. 203)

' ईमानदारी न्यायिक अनुशासन की पहचान, दूसरों से अलग है। अब समय आ गया है कि न्यायपालिका इस बात का पूरा ध्यान रखे कि न्याय का मंदिर अंदर से टूट न जाए। जिससे न्याय-वितरण प्रणाली में तबाही मच जाएगी परिणाम स्वरूप व्यवस्था में जनता का विश्वास विफल हो जाता है। यह याद रखना चाहिए कि अंदर का कठफोड़वा बाहर के तूफान की तुलना में एक बड़ा खतरा खड़ा करता हैं।

6. न्यायाधीश का व्यवहार न्यायालय के अंदर और बाहर दोनों जगह सटीक होना चाहिए। यह न्यायालय ***दया शंकर बनाम इलाहाबाद उच्च न्यायालय*** [दया शंकर बनाम इलाहाबाद

---

[14] (2020) 11 एससीसी 760

उच्च न्यायालय, (1987) 3 एससीसी 1: 1987 एससीसी (एल एंड एस) 132] में इस प्रकार माना: (एससीसी पीपी 4-5, पैरा 11)]

'11 . ..... न्यायिक अधिकारियों के दो मानक नहीं हो सकते हैं, एक न्यायालय में और दूसरा न्यायालय के बाहर। उनके पास केवल एक ही मानक इंसाफ, ईमानदारी और सत्यनिष्ठा का होना चाहिए। वे जिस पद पर हैं, उसके लिए दूर-दूर तक अयोग्य कार्य नहीं कर सकते।'

7. न्यायाधीश भी लोक सेवक होते हैं। एक न्यायाधीश को हमेशा याद रखना चाहिए कि वह जनता की सेवा के लिए हैं। एक न्यायाधीश को न केवल उसके निर्णयों की गुणवत्ता से बल्कि उसके चरित्र की गुणवत्ता और शुद्धता से भी आंका जाता है। न्यायाधीश के सार्वजनिक और व्यक्तिगत जीवन दोनों में त्रुटिहीन सत्यनिष्ठा प्रतिबिंबित होनी चाहिए। जो दूसरों पर निर्णय लेने में खड़ा रहता है, उसे अदूष्य होना चाहिए। यही वह उच्च मानक है जिसकी न्यायाधीशों से अपेक्षा की जाती है।

8. न्यायाधीशों को यह याद रखना चाहिए कि वे केवल कर्मचारी नहीं हैं बल्कि उच्च सार्वजनिक पद धारण करते हैं। ***आर. सी. चंदेल बनाम एम. पी. का उच्च न्यायालय*** [आर. सी. चंदेल बनाम एम. पी. का उच्च न्यायालय, (2012) 8 एस. सी. सी. 58: (2012) 2 एस. सी. सी. (सी. वी.) 343: (2012) 3 एस. सी. सी. (सी. आर. आई) 782: (2012) 2 एस. सी. सी. (एल. एंड. एस.) 469], में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि एक न्यायाधीश से अपेक्षित आचरण का मानक एक साधारण व्यक्ति से बहुत अधिक है। इस न्यायालय की निम्नलिखित टिप्पणियां प्रासंगिक हैंः (एससीसी पी. 70, पैरा 29)

'29 . न्यायिक सेवा कोई साधारण सरकारी सेवा नहीं है और न्यायाधीश इस तरह के कर्मचारी नहीं हैं। न्यायाधीश सार्वजनिक पद धारण करते हैं; उनका कार्य राज्य के आवश्यक कार्यों में से एक है। अपने कार्यों और कर्तव्यों के निर्वहन में, न्यायाधीश राज्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। न्यायाधीश जिस पद पर होता है वह सार्वजनिक न्यास का पद होता है। एक न्यायाधीश त्रुटिहीन अखंडता और निष्कलंक स्वतंत्रता का व्यक्ति होना चाहिए। उच्च नैतिक मूल्यों के साथ मूल रूप से ईमानदार होना चाहिए। जब कोई वादी अदालत कक्ष में प्रवेश करता है, तो उसे सुरक्षित महसूस करना चाहिए कि

जिस न्यायाधीश के समक्ष उसका मामला आया है, वह निष्पक्ष रूप से और किसी भी विचार से प्रभावित हुए बिना न्याय देगा। एक न्यायाधीश से अपेक्षित आचरण का स्तर एक आम आदमी की तुलना में बहुत अधिक होता है। यह कोई बहाना नहीं है कि चूंकि समाज में मानक गिर गए हैं, इसलिए समाज से लिए गए न्यायाधीशों से उच्च मानकों और नैतिक दृढ़ता की उम्मीद नहीं की जा सकती है। सीज़र की पत्नी की तरह एक न्यायाधीश को संदेह से परे होना चाहिए। न्यायिक प्रणाली की विश्वसनीयता यह उन न्यायाधीशों पर निर्भर है जो इसका प्रबंधन करते हैं। लोकतंत्र के फलने-फूलने और कानून के शासन के जीवित रहने के लिए, न्याय प्रणाली और न्यायिक प्रक्रिया को मजबूत होना होगा और प्रत्येक न्यायाधीश को ईमानदारी, निष्पक्षता और बौद्धिक ईमानदारी के साथ अपने न्यायिक कार्यों का निर्वहन करना होगा।

9. इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि एक न्यायाधीश को मामले का फैसला केवल रिकॉर्ड पर मौजूद तथ्यों और मामले पर लागू होने वाले कानून के आधार पर करना चाहिए। यदि कोई न्यायाधीश किसी मामले का निर्णय बाहरी कारणों से करता है तो वह अपना कर्तव्य कानून के अनुसार नहीं निभा रहा है।

10. हमारे विचार में "संतुष्टि" शब्द का अर्थ केवल मौद्रिक संतुष्टि ही नहीं है। संतुष्टि विभिन्न प्रकार की हो सकती है। यह धन की संतुष्टि, शक्ति की संतुष्टि, वासना आदि की संतुष्टि, आदि हो सकती है।

7. यह भी ध्यान दिया जा सकता है कि न्यायिक या अर्ध-न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करने वाले अधिकारी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई हो सकती है, जो इस अदालत द्वारा **भारत संघ बनाम के.के. धवन** (ऊपर) के मामले में संक्षिप्त रूप से निर्धारित किया गया है: -

" 28. इसलिए, निश्चित रूप से, जो अधिकारी न्यायिक या अर्ध-न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करता है, वह लापरवाही या लापरवाही से कार्य करता है या किसी व्यक्ति को अनुचित अनुग्रह प्रदान करने के लिए कार्य करता है, वह न्यायाधीश के रूप में कार्य नहीं कर रहा है। तदनुसार, प्रत्यर्थी के तर्क को अस्वीकार किया जाना चाहिए। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि वर्तमान मामले में, हम प्रत्यर्थी के निर्णय की शुद्धता या वैधता से चिंतित नहीं हैं, बल्कि प्रत्यर्थी के आचरण जो एक अधिकारी के रूप में अपने कर्तव्यों के निर्वहन से संबंधित हैं। नौ आकलनों के संदर्भ में आदेशों की वैधता पर अधिनियम के

तहत अपील या संशोधन में सवाल उठाया जा सकता है। लेकिन हमारे पास हमारे मन में कोई संदेह नहीं है कि सरकार आचरण नियमों के उल्लंघन के लिए अनुशासनात्मक कार्रवाई करने से अछूती नहीं है। इस प्रकार, हम निष्कर्ष निकालते हैं कि निम्नलिखित मामलों में अनुशासनात्मक कार्रवाई हो सकती है:

i. जहाँ अधिकारी ने उस तरीके से कार्य किया था जो उसकी कर्तव्य के लिए सत्यनिष्ठा या सद्भावना या भक्ति को दर्शाता है;
ii. यदि लापरवाही या अपने कर्तव्य के निर्वहन में कदाचार दिखाने के लिए प्रथम दृष्टया सामग्री है;
iii. यदि उसने ऐसा कार्य किया है जो सरकारी कर्मचारी के लिए अनुपयुक्त है;
iv. यदि उसने लापरवाही से काम किया है या निर्धारित शर्तों का लोप किया है जो वैधानिक शक्तियों के प्रयोग के लिए आवश्यक हैं;
v. यदि उसने किसी पक्ष का अनुचित रूप से पक्ष लेने के लिए कार्य किया था;
vi. यदि वह भ्रष्ट इरादे से प्रेरित किया गया था, तथापि रिश्वत कम हो सकती है इसलिए लॉर्ड कोक ने बहुत पहले कहा था "हालांकि रिश्वत छोटी हो सकती है, फिर भी बहुत बड़ी गलती है"।

8. यह कहना तुच्छ है कि संवैधानिक न्यायालय को प्रदत्त न्यायिक समीक्षा की शक्ति किसी अपीलीय प्राधिकारी की नहीं है, बल्कि यह केवल निर्णय लेने की प्रक्रिया तक ही सीमित है। विभागीय अधिकारियों के निर्णय में हस्तक्षेप की अनुमति केवल तभी दी जाती है जब कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए या ऐसी कार्यवाही को विनियमित करने वाले वैधानिक नियमों का उल्लंघन करते हुए या यदि निर्णय मनमाना और मनमौजी पाया जाता है। न्यायालय एक अपीलीय न्यायालय के रूप में कार्य करने और उन्हें घरेलू जांच में दिए गए साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन नहीं करना चाहिए, और न ही इस आधार पर हस्तक्षेप करना चाहिए कि अभिलेख पर सामग्री पर कोई अन्य दृष्टिकोण संभव है। यदि जांच निष्पक्ष और उचित रूप से आयोजित की गई है, और निष्कर्ष इस पर आधारित हैं, साक्ष्य की पर्याप्तता या साक्ष्य की विश्वसनीयता विभागीय पूछताछ में दर्ज निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने का आधार नहीं होगी।

9. ***बंबई उच्च न्यायालय बनाम शशि कांत एस. पाटिल और अन्य***[15] में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित कियाः

" ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय की खंड पीठ ने मामला इस तरह उठाया गया जैसे कि यह उच्च न्यायालय के प्रशासनिक/अनुशासनात्मक प्राधिकरण के आदेश के खिलाफ एक अपील हो। विभागीय निर्णय में हस्तक्षेप संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय अधिकारियों को अनुमति दी जा सकती है, यदि ऐसे प्राधिकरण ने न्याय नैसर्गिक नियमों के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए कार्यवाही की थी या ऐसी जांच के तरीके को निर्धारित करने वाले वैधानिक विनियमों के उल्लंघन में या यदि प्राधिकरण का निर्णय मामले के साक्ष्य और गुण-दोष के लिए बाहरी विचारों द्वारा दूषित किया जाता है, या यदि प्राधिकरण द्वारा किया गया निष्कर्ष, इसके बावजूद, पूरी तरह से मनमाना या मनमौजी है कि कोई भी समझदार व्यक्ति इस निष्कर्ष, या आधार उपरोक्त के समान हैं पर नहीं पहुंच सकता था। लेकिन हम इस बात को नजरअंदाज नहीं कर सकते कि विभागीय प्राधिकरण (इस मामले मे उच्च न्यायालय की अनुशासन समिति) तथ्यों का एकमात्र न्यायाधीश है, यदि जांच ठीक से की गई है। तय कानूनी स्थिति यह है कि यदि कुछ कानूनी साक्ष्य हैं जिन पर निष्कर्ष आधारित हो सकते हैं, तो उस साक्ष्य की पर्याप्तता या विश्वसनीयता भी उच्च न्यायालय के समक्ष संविधान के अनुच्छेद 226 तहत दायर रिट याचिका में मतार्थना करने का मामला नहीं है"।

10. फिर से, ***स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एंड जयपुर बनाम नेमी चंद नलवाया***[16] में, यह पैरा 7 में निम्नानुसार अवलोकन किया:

" 7. अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि अदालतें एक अपीलीय अदालत के रूप में कार्य नहीं करेंगी और घरेलू जांच में दिए गए साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन नहीं करेंगी, और न ही इस आधार पर हस्तक्षेप करेंगी कि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर दूसरा

---

[15] (2000) 1 एस. सी. सी. 416

[16] (2011) 4 एससीसी 584

दृष्टिकोण संभव है । अगर जांच निष्पक्ष और उचित रूप से आयोजित की गई है और निष्कर्ष साक्ष्य पर आधारित हैं, साक्ष्य की पर्याप्तता का प्रश्न या साक्ष्य की विश्वसनीय प्रकृति विभागीय पूछताछ में निष्कर्षों में हस्तक्षेप करनेके लिए आधार नहीं होगा। इसलिए, अदालतें विभागीय पूछताछ में दर्ज तथ्यों के निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं करेंगी, सिवाय इसके कि निष्कर्ष किसी भी साक्ष्य पर आधारित नहीं हैं या जहां वे स्पष्ट रूप से विकृत हैं। विकृति का पता लगाने के लिए परीक्षण यह देखना है कि क्या न्यायाधिकरण अभिलेख पर मौजूद सामग्री पर उचित कार्रवाई करके ऐसे निष्कर्ष पर पहुंच सकता था। तथापि, न्यायालय अनुशासनात्मक मामलों के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करेंगी, यदि प्राकृतिक न्याय या वैधानिक नियमों के सिद्धांतों का उल्लंघन किया गया है या यदि आदेश मनमाना, मनमौजी, दुर्भावनापूर्ण या बाहरी विचारों पर आधारित पाया जाता है।

11. मामले के तथ्यों पर लौटते हुए, यह ध्यान दिया जा सकता है कि अपीलार्थी के खिलाफ उसे आरोप पत्र देने और उसे सुनवाई का पूरा अवसर देने के बाद नियमित रूप से अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाती थी। इसके बाद, जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत जांच रिपोर्ट के अनुसार, उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायालय ने 02.09.2006 को उक्त जांच रिपोर्ट को स्वीकार करने और अपीलार्थी पेंशन लाभ में तत्काल प्रभाव से 90% कटौती के साथ दंडित करने का संकल्प लिया था। प्रतिवादी राज्य द्वारा पारित दंड का आदेश, उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायालय द्वारा की गई उक्त सिफारिश के आधार पर, को चुनौती अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका दायर करके दी गई थी। उच्च न्यायालय ने आरोप संख्या 1 से 3 को हटा दिया और आरोप संख्या 4 से 11 तक को अपीलार्थी के खिलाफ बरकरार रखा, और उसके पेंशन लाभों के 90 प्रतिशत के स्थान पर सजा को घटाकर 70 प्रतिशत कर दिया गया।

12. उल्लेखनीय है कि अपीलार्थी ने जाँच कार्यवाही या निर्णय लेने की प्रक्रिया में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन या किसी भी वैधानिक नियमों या विनियमों के उल्लंघन के संबंध में कोई आरोप नहीं लगाया था। इसलिए, ऐसे किसी भी आरोप के अभाव में, प्रशासनिक पक्ष से उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्तिपरक संतुष्टि प्राप्त हुई, और न्यायिक पक्ष से उच्च न्यायालय द्वारा पारित विवादित आदेश इस न्यायालय के किसी भी हस्तक्षेप की गारंटी नहीं देता है। जब जांच की कार्यवाही उचित और कानूनी तरीके से की गई पाई गई है, और जब प्रशासनिक पक्ष के साथ-साथ न्यायिक पक्ष में उच्च न्यायालय ने जाँच अधिकारी द्वारा आरोप

सं. 4 से 11 निष्कर्षों अपीलार्थी के खिलाफ "साबित" के रूप में, उसे "कदाचार" करने का दोषी ठहराते हुए स्वीकार कर लिया है, इस न्यायालय से अपील प्राधिकारी के रूप में बैठने और पूछताछ अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य की पर्याप्तता या विश्वसनीयता का पुनर्मूल्यांकन करने की अपेक्षा नहीं की गई थी। फिर भी, इस अदालत ने केवल अपनी अंतरात्मा को संतुष्ट करने के लिए, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री प्रदीप कांत को अपीलार्थी के खिलाफ लगाए गए आरोपों के गुण-दोष पर बहस करने की अनुमति दी थी।

13. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री कांत द्वारा उठाए गए तर्क का मूल यह था कि अपीलार्थी के खिलाफ लगाए गए आरोप तथ्यात्मक रूप से या कानूनी रूप से टिकाऊ नहीं थे जितना कि अपीलार्थी ने प्रासंगिक समय पर प्रचलित कानून के अनुसार भूमि संदर्भ मामलों का फैसला किया था। उनके अनुसार जैसा कि ***भारत संघ और अन्य बनाम इकबाल सिंह (ऊपर), खोरशेद शापूर चेनाई श्रीमती बनाम सहायक नियंत्रक संपदा शुल्क (ऊपर), सोरन सिंह बनाम कलेक्टर और अन्य (ऊपर)*** में अभिनिर्धारित किया गया है, मुआवजे की मांग करने का अधिकार संपत्ति का अधिकार है और इसे हस्तांतरित किया जा सकता है। इस न्यायालय की राय में, उक्त निर्णय प्रत्येक मामले के तथ्यों पर विचार करते हुए दिए गए हैं, और भूमि अधिग्रहण अधिनियम के तहत अपीलार्थी द्वारा तय किए गए मामलों के तथ्यों के लिए शायद ही कोई प्रासंगिकता है। ***भारत संघ और अन्य बनाम इकबाल सिंह (ऊपर),*** के मामले में, यह न्यायालय विस्थापित व्यक्ति (क्षतिपूर्ति और पुनर्वास) नियम, 1955 के तहत एक विस्थापित व्यक्ति द्वारा निष्पादित वसीयत के तहत एक उत्तराधिकारी के रूप में दावेदार के अधिकार की जांच कर रहा था। ***खोरशेद शापूर चेनाई श्रीमती बनाम सहायक नियंत्रक संपदा शुल्क*** *(ऊपर)* के मामले में, मुआवजे के संबंध में सहायक संपदा शुल्क नियंत्रक, हैदराबाद द्वारा जारी नोटिस की वैधता और विधिमान्यता का प्रश्न अधिग्रहीत भूमि के मृत मालिक के कानूनी उत्तराधिकारियों और प्रतिनिधियों द्वारा प्राप्त किए गए क्षतिपूर्ति के संबंध में विचाराधीन था। जहाँ तक अपीलार्थी के खिलाफ लगाए गए आरोपों का संबंध है, यह आरोप लगाया गया था कि अपीलार्थी ने बाद के खरीदारों/निवेशकों के पक्ष में अत्यधिक उच्च दर पर बढ़े हुए मुआवजे का आदेश दिया था, जिन्हें कोई मुआवजा प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं था, विशेष रूप से जब संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 6 (ई) ने मात्र मुकदमा करने के अधिकार के हस्तांतरण पर प्रतिबंध लगा दिया था। उक्त मामलों का निर्णय अपीलार्थी द्वारा कानून और समानता के मुख्य सिद्धांतों के घोर उल्लंघन में और

सभी न्यायिक मानदंडों और औचित्य के खिलाफ, ऐसे बाद के खरीदारों का अनुचित पक्ष लेने की दृष्टि से किया गया था, जिन्हें क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का कोई कानूनी अधिकार नहीं था।

14. अपीलार्थी के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री कांत द्वारा ***कृष्ण प्रसाद वर्मा बनाम बिहार राज्य*** *(ऊपर),* ***साधना चौधरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*** *(ऊपर)* और ***अभय जैन बनाम राजस्थान उच्च न्यायालय और अन्य*** *(ऊपर)* के मामले में इस अदालत के फैसले पर बहुत अधिक निर्भर किया गया था। उनकी इस दलील को पुष्ट करने के लिए कि केवल संदेह कदाचार का गठन नहीं कर सकता है, और कदाचार की किसी भी संभावना को मौखिक या दस्तावेजी सामग्री के साथ समर्थित करने की आवश्यकता है। उन्होंने यह भी कहा कि न्यायिक अधिकारियों के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही केवल इसलिए शुरू नहीं की जा सकती क्योंकि उनके द्वारा पारित निर्णय या आदेश गलत थे। हम अपीलकर्ता के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियों से पूरी तरह सहमत हैं और उनके द्वारा दिए गए निर्णयों के औचित्य पर भरोसा किया गया। फिर भी, तत्काल मामले में अपीलार्थी को उस तरीके से कार्यवाही का संचालन करते हुए पाया गया जो उसकी प्रतिष्ठा और सत्यनिष्ठा पर प्रतिबिंबित होता था। यह दर्शाने के लिए पर्याप्त साक्ष्य और सामग्री थी कि अपीलार्थी ने एक न्यायिक अधिकारी के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते समय गलत आचरण किया था, और कानून के विशिष्ट प्रावधानों की पूरी तरह से अवहेलना करते हुए न्यायिक आदेश पारित किए थे, ताकि अधिग्रहित भूमि के बाद के खरीदारों को अनुचित रूप से लाभ पहुंचाया जा सके, जिन्हें मुआवजे का दावा करने का कोई अधिकार नहीं था, और यह कि ऐसे आदेश भ्रष्ट उद्देश्य से प्रेरित थे। इन परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 235 के तहत अपने पर्यवेक्षी अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में पूरी तरह से उचित था।

15. हमारी राय में, न्यायिक आदेश पारित करने की आड़ में किसी पक्ष को अनुचित पक्ष दिखाना सबसे खराब प्रकार की न्यायिक बेईमानी और दुराचार है। अनुग्रह दिखाने के लिए बाहरी प्रतिफल हमेशा मौद्रिक प्रतिफल होना जरूरी नहीं है। यह अक्सर कहा जाता है कि लोक सेवक पानी में मछली की तरह होते हैं, कोई नहीं कह सकता कि मछली ने पानी कब और कैसे पिया। एक न्यायाधीश को मामले में लागू कानून के तथ्य के आधार पर मामले का फैसला करना चाहिए। यदि वह किसी मामले का निर्णय बाह्य कारणों से करता है, तो वह अपने कर्तव्यों का

पालन कानून अनुसार नहीं कर रहा है। जैसा कि अक्सर उद्धृत किया जाता है, न्यायाधीश को सीज़र की पत्नी की तरह संदेह से परे होना चाहिए।

16. मामले के उस दृष्टिकोण में, हमें वर्तमान अपील में कोई योग्यता नहीं दिखती और उसे खारिज किया जाता है।

अपील खारिज किया गया।

धनंजय पांडेय